ओ३म् परमात्मा जयति

दयानंदके मूल सिद्धान्तकी हानि

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि। मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि। पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि। आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि। एनस एनसोऽवयजनमसि। यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार यच्चाविद्वांस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि।

सत्यार्थप्रकाश मुद्रित सन् १८८४ के पृष्ठ ७२ में, दयानन्द का मूल सिद्धान्त यह है कि जो २ वेदमें करने और छोड़ने की शिक्षा की है उस २ का हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं जिस लिये वेद हम को मान्य है इस लिये हमारा मत वेद है फिर पृष्ठ ८३ में लिखा है कि वेदों के प्रमाण से सब काम किया करो परन्तु उसने जिन चार पुस्तकों को वेद माना है वे उसी के लेखानुसार वेद नहीं सिद्ध होते देखो उसने उक्त सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ २०५ में ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं अपने इस कपोलकल्पित सिद्धांत के निर्णयार्थ लिखा है कि ब्राह्मण पुस्तकोंमें बहुत से ऋषि महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं इतिहास जिसका हो उसके जन्मे पश्चात् लिखा जाता है-वह ग्रन्थ भी उसके जन्मे पश्चात् होता है वेदों में किसी का इतिहास नहीं किसी मनुष्य की संज्ञा या

विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं इति मन्त्रभाग दयानन्द के माने हुए चारों वेदों में भी ऋषि महर्षि और राजादि के नाम तथा इतिहास स्पष्ट लिखे हैं तथापि यजुर्वेद अध्याय १ मन्त्र १८ भृगूणामंगिरसां तपसा तप्यध्वम्-यहां भृगु और अंगिरानाम देवर्षियों के स्पष्ट हैं। अध्याय ६ मं० ३२ त्र्यायुषं जमदग्ने० इस श्रुतिमें जमदग्नि मुनि और कश्यप प्रजापति का नाम है अध्याय ४ मं० ३ वृत्रस्यासिकनीनकः। अर्थात् हे अंजन! तू वृत्र (असुर) के नेत्र की पुतली है इस पर शत० ३।१।२।१२। यत्र वा इन्द्रो वृत्रमहंस्तस्ययदक्ष्यासीदि-त्यादि श्रुतिः। तथाच तित्तिरिः इन्द्रोवृत्रमहनत्तस्य कनीनिका परापतत्तदेवाञ्जनमभवदिति। अर्थात् इन्द्र ने वृत्र को मारा तिसकी पुतली गिरी सो यहां अंजन हुई यह इतिहास है अध्याय ५ मं० २ उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवाऽअसि। यहां उर्वशी और पुरूरवा राजाका दृष्टान्त है शतपथ ३।४।१।२२ में इसकी विशेष व्याख्या है अध्याय १० मं० ३३ युवं सुराममश्विना नमुचावासुरेसचा॥ इस श्रुति में नमुचि असुर का नाम स्पष्ट है शत० १२।३।४।१। में इसकी व्याख्या है तथाहि नमुचिर्हासुर इन्द्रस्य सखासीत् सविश्वस्तस्येन्द्रस्य-वीर्यं सुरया सोमेन सह पपौ ततः इन्द्रोऽश्विनौ सरस्वतींचोवाचाहं नमुचिना पीतवीर्योऽस्मि ततोऽश्विनौ सरस्वती चापां फेनरूपं वज्रमिन्द्राय ददुः तेनेन्द्रो नमुचेः शिरश्छिच्छेदइत्यादि

नमुचिनामा असुर इन्द्र का सखा था उसने विश्वस्त इन्द्र के वीर्य को सुरासोम सहित पिया तब इन्द्र ने अश्विनीकुमारों और सरस्वती से कहा कि मैं नमुचिका पीत वीर्य हूं तब अश्विनीकुमारों और सरस्वती ने अध्याय १६ मं० ७१ । अपां फेनेन इस श्रुत्युक्तरूप वज्र इन्द्र को दिया उससे इन्द्र ने नमुचिका शिर छेदा अध्याय ११ मं० ३३ तमुत्वादध्यङ् ङृषिः पुत्रईधेऽअथर्वणः । वृत्रहणम्पुरन्दरम् ॥ इस श्रुतिमें अथर्वणः और दध्यङ् ऋषि तथा वृत्र और पुरन्दर अर्थात् इन्द्र का नाम स्पष्ट है अध्याय १२ मं० ४ दयानन्द जी ने अपने किये यजुर्वेद भाष्य में (वामदेव्यम्) वामदेव ऋषि ने जाने वा पढ़ाये सामवेद इत्यादि लिखा है यहां वामदेव ऋषि का नाम स्पष्ट है और वामदेव ने पढ़ाये इस से और ऋषियों का विद्यमान होना भी प्रकट है वेद में ऋषियों के नाम और इतिहास हैं इस विषय में दयानन्द जी का यह एक ही लेख प्रबल प्रमाण है अध्याय १२ मं० ९८ त्वांगंधर्वाअखनंस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः त्वामोषधेसोमोराजा विद्वान्यक्ष्मादमुच्यत ॥ अर्थात् हे ओषधियो! गंधर्व (देवविशेष) तुम्हें स्वेष्ट कार्य सिद्ध्यर्थ खनन करते हुए और इन्द्र तुम्हें खनता हुआ सोमराजा तेरी सामर्थ्य को जानकर तुझे पान करके यक्ष्मा (महाव्याधि) से मुक्त हुआ । अध्याय १७ मं० ७४ कण्व ऋषि का नाम है । अध्याय १७ मं० ७९ सप्तऋषयः इस पद से मरीच्यादि सप्तऋषियोंका वर्णन है ॥ अध्याय १८ मं० ५६ भृगुभिः इस पदसे

भृगुगोत्री ब्राह्मणों का वर्णन है॥ अध्याय १८ मं ६८।६९ वृत्र दैत्य का स्पष्ट वर्णन है॥ अध्याय १९ मं० ५० यहां अंगिरा अथर्वण और भृगु मुनिका नाम स्पष्ट है॥अध्याय १९ मं० ७१ अपांफेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्त्तयः यहां इन्द्र ने नमुचि असुर का शिर काटा यह कथा स्पष्ट है जिसका वर्णन अध्याय १० मं० ३३ में हुआ अध्याय २० मं० ६८ में भी इन्द्र ने नमुचि असुर को विदारण किया यह कथा स्पष्ट है। यहां निरुक्त ६-२ का प्रमाण है यास्कः नमुचिविदार्यवृष्टिकारित्वानित्यर्थः। अध्याय २३ मं० ६३ सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे। दधेहगर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः। इस श्रुति में प्रजापति नाम श्रीब्रह्माजी की उत्पत्ति स्पष्ट है अध्याय २८ मं०३ वज्रहस्तः पुरन्दरः अर्थात् इन्द्रका विशेषण वज्रहस्तः अर्थात् वज्र है हाथमें जिसके यहां इन्द्रनाम देवराज का स्पष्ट है। अध्याय ३३ मं० २६। ५०।६७।९६। तथा अध्याय ३४ मं० ७ में इन्द्र वृत्रासुरकी कथा है। अध्याय ३४ मं० ११ पंचनद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः। सरस्वतीतु पञ्चधासो देशेऽभवत्सरित्। इस श्रुति में हृषद्वत्यादि पांच नदियोंका वर्णन है और सरस्वती नदीका नाम प्रत्यक्ष है यहां तक यजुर्वेदान्तर्गत महर्षि आदिकोंके नाम और कथाओं का संक्षेप से वर्णन हुआ पूर्व भाष्यकारोंने यही आशय लिखा है और कहीं २ शतपथ और निरुक्त का प्रमाण भी दिया है परन्तु दयानन्दजी ने सर्वत्र बनावटकी है सज्जन लोग वेदको

हाथ में लेकर पक्षपात रहित न्याय दृष्टिसे वेद के अक्षरों पर विचार करें कि हमारा लेख सत्य है वा दयानन्द जी की बनावट क्या शतपथ और निरुक्त के विरुद्ध दयानन्द जी का लेख सत्य हो सकता है कदापि नहीं।

अथर्ववेद काण्ड १८ कण्व कक्षीवान्पुरुमीढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः। विश्वामित्रोऽयंजमदग्निरत्रिरवन्तुनः कश्यपो वामदेवः ॥ १ ॥ विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुसंशासः पितरोमृडतानः ॥ २ ॥ काण्ड २० परिक्षिन्नः क्षेममकरत्तम आसनमाचरन् कुलायं कृण्वन्कौरव्यःपतिर्वदतिजायया ॥ १ ॥ कतरत्त आहराणिदधिमन्थं परिश्रुतं जायापतिं विपृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ २ ॥ अभीवस्वः प्रजिहीतेयवः पक्वः परोबिलम्। जनःसभद्रमेधतेराष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ ३ ॥

उक्त मन्त्रों में महर्षियों के नाम और कुरुवंशी राजा परिक्षित्का इतिहास स्पष्ट है यह लेख दिग्दर्शनवत् किया गया है इसी प्रकार ऋग्वेद तथा सामवेद में भी अनेक ऋषि महर्षि और राजादि के नाम तथा इतिहास प्रत्यक्ष लिखे हैं। दयानन्द जी ने आप यजुर्वेद भाष्य अध्याय १२ मन्त्र ४ की व्याख्यामें वामदेव ऋषि और अध्याय ११ मन्त्र ७३की व्याख्या में अङ्गिरा विद्वान् तथा अध्याय २२ मन्त्र २० के पदार्थ में सरस्वती नामवाली नदी लिखा है और सत्यार्थ प्रकाश मुद्रित सन् १८८४के पृष्ठ २२६में लिखा है कि जो कुछ वेदादि शास्त्रों

में व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं उसी का मान्य करना भद्र पुरुषों का काम है अब दयानन्द के उक्त लेखानुसार कि इतिहास जिसका हो उसके जन्म के पश्चात् लिखा जाता है वह ग्रन्थ भी उसके जन्मे पश्चात् होता है वेदों में किसी का इतिहास नहीं किसी मनुष्य की संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं। इस न्याय से उसके माने वेद भी वेद न रहे अतः उसके मूल सिद्धान्त की हानि है जब कि दयानन्दियों को धर्माधर्म के निर्णयमें केवल वेद ही प्रमाण हैं और उनका पता नहीं तो उनके समस्त सिद्धान्तों की सर्वथा हानि है अस्तु फिर उक्त सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ५८७के लेखानुसार (कि ११२७ वेदों की शाखा जो कि वेदोंके व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये हुये ग्रन्थ हैं)दयानन्द शाखाओं को वेद नहीं मानता किन्तु उनको ब्रह्मादि महर्षियोंके बनाये ग्रन्थ जानता है परन्तु उसने जिन चार पुस्तकों को वेद माना है वास्तव में वे भी ११३१ शाखान्तर्गत चार शाखा ही हैं शाखाओं से पृथक् कदापि नहीं हमने इसकी विशेष व्याख्या दयानन्द चरित्र और दयानन्दी मत के खातमे में लिखी है जब कि दयानन्द के मत में शाखायें वेद नहीं हैं तो उसके माने हुये वेद भी वेद न रहे किन्तु अन्य शाखाओं के समान ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ ठहरे यह दयानन्द के मूल सिद्धान्त में दूसरी हानि हुई अस्तु महाभाष्य में चारों वेदों की ११३१ शाखा लिखी हैं वे सम्पूर्ण वेद ही हैं दयानन्द ने उन्हीं में से चार (शाखाओं को

वेद मान लिया और ११२७ को ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ लिख दिया यह उसकी अल्पज्ञताका फल है परन्तु उसनें यजुर्वेद भाष्य अध्याय १ मन्त्र १८ की व्याख्या में आर्ष वेदके शाखान्तर द्वारा विभाग यह लिखा है अतएव शाखाओं को वेद न मानना सर्वथा मिथ्या है फिर उक्त सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ३२७ में लिखा है कि ऐतरेय शतपथ साम और गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थोंहीके इतिहास पुराण कल्प गाथा और नाराशंसी ये पांच नाम हैं इत्यादि पृष्ठ ५८६ में है कि पुराण जो ब्रह्मादि के बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक है उन्हीं को पुराण इतिहास कल्प गाथा और नाराशंसी नामसे मानता हूं इति दयानन्द के माने हुये अथर्वेद काण्ड १५ में यह श्रुति है सबृहती दिशमनुव्यचलत् तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् । इतिहासस्य च वैसपुराणस्यच गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धामभवति य एवं वेद ॥ उक्त श्रुति में इतिहास पुराण गाथा और नाराशंसी ये पद स्पष्ट विद्यमान हैं दयानन्द के कथनानुसार वे ब्राह्मण ग्रन्थों ही के नाम हैं अब सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २०५ के लेखानुसार " कि ब्राह्मण पुस्तकों में बहुतसे ऋषि महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं और इतिहास जिसका हो उस के जन्म के पश्चात् लिखा जाता है वह ग्रंथ भी उसके जन्मे पश्चात् होता है इत्यादि,, सिद्ध होता है कि अथर्व वेदका प्रकाश ब्राह्मण ग्रन्थोंके पश्चात् हुआ क्योंकि उसमें ब्राह्मण ग्रन्थोंका वर्णन है उक्त लेख से

यहां तक सिद्ध होता है कि ब्राह्मण पुस्तकों में जिन २ ऋषि महर्षि और राजादिके इतिहास लिखे हैं अथर्ववेद उन २ ऋषि महर्षि और राजादि के पश्चात् प्रकट हुआ यह दयानन्दके मूलसिद्धान्त में तीसरी हानि हुई अस्तु-

संस्कारविधि मुद्रित संवत् १९३३ के पृष्ठ ६२ में अथर्ववेदका यह मन्त्र लिखा है-पूर्वोजातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत्। तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्मज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेनसाकम्॥ पृष्ठ ७० में दयानन्दजी ने इस मन्त्र की व्याख्या में शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थ लिखे हैं यहां भी सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २०५ के पूर्वोक्त लेखानुसार अथर्ववेद का प्रकाश शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों तथा शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुतसे ऋषि महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं उन समस्त के पश्चात् ही हुआ सम्यक् सिद्ध है यह दयानन्द के मूल सिद्धान्त में चतुर्थ हानि हुई अस्तु-

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पृष्ठ ७६ डाक्टर मोक्षमूलर साहिब के इस कथन पर कि वेदों की उत्पत्ति में २९०० वर्ष हुए हैं लिखा है कि उन का यह कहना ठीक नहीं हो सकता क्योंकि उन्हों ने (हिरण्यगर्भः) और (अग्निःपूर्वेभिः) इन दोनों मन्त्रों का अर्थ यथावत् नहीं जाना है तथा मालूम होता है कि उन को हिरण्यगर्भ शब्द नवीन जान पड़ा होगा इस विचारसे कि हिरण्य नाम है सोनेका वह सृष्टिसे बहुत पीछे उत्पन्न हुआ है-अर्थात् मनुष्यों की उन्नति राजा और प्रजाके

प्रबन्ध होनेके उपरान्त पृथ्वी में से निकाला गया है सो यह बात भी उन की ठीक नहीं हो सकती क्योंकि इस शब्द का अर्थ यह है कि ज्योति कहते हैं विज्ञान को, सो जिस के गर्भ अर्थात् स्वरूपमें है ऐसा जो एक परमेश्वर है उसीको हिरण्य-गर्भ कहते हैं इस हिरण्यगर्भ शब्द प्रयोगसे वेदोंका उत्तमपन और सनातनपन तो यथावत् सिद्ध होता है परन्तु इससे उन का नवीनपन सिद्ध कभी नहीं हो सकता इससे डाक्टर मोक्ष मूलर साहिब का कहना जो वेदों के नवीन होनेके विषयमें है सो सत्य नहीं है इत्यादि स्वामीजी के इस लेख का अभिप्राय यह हुआ कि डाक्टर मोक्षमूलर साहिबने (हिरण्यगर्भ) पद से सोने का अर्थ समझ कर वेदों को नवीन कहा है क्योंकि सोना सृष्टिसे बहुत पीछे मनुष्यों की उन्नति राजा और प्रजा के प्रबन्ध होने के उपरान्त पृथ्वी में से निकाला गया परन्तु उक्त पदमें हिरण्य नाम सोनेका नहीं है किन्तु ज्योतिः आदि का है इस से वेदों का नवीनपन सिद्ध कभी नहीं हो सकता स्वामी जी के लेख का सारांश यह है कि यदि वेदों में सोने का नाम आता तो वेदो का नवीनत्व सिद्ध होता क्योंकि सोना सृष्टि से बहुत पीछे उत्पन्न हुआ है हिरण्यगर्भः इस मन्त्र में हिरण्य शब्द का अर्थ सोना नहीं है अतः वेदोंको न-वीन कहना ठीक नहीं ।

पाठकगण ! स्वामी जी ने यजुर्वेद भाष्य अध्याय १८ "अ-श्मा च मे मृत्तिका च मे" इस मन्त्रकी व्याख्यामें स्वयं सुवर्ण

लिखा है अब उन्हीं के पूर्व लेखानुसार सोना सृष्टि से बहुत पीछे उत्पन्न हुआ है और उन्होंने आप वेदमन्त्र की व्याख्या में सुवर्ण लिखा है उनके विचारानुसार उन के माने हुए वेद नवीन ठहरे उक्त मन्त्र की व्याख्या में केवल सुवर्ण ही नहीं किन्तु पत्थर हीरा आदि रत्न मट्टी बड़े छोटे पर्वत और पर्वत में होने वाले पदार्थ वट आम्रादि वृक्ष चांदी लोहा शस्त्र सीसा जस्ता और पीतल आदि भी लिखे हैं उक्त अध्याय मन्त्र ६ की व्याख्यामें दूध घी शहत खांड़ गुड़ और मन्त्र १२ की व्याख्या में चांवल जौ अरहर उड़द मटर तिल मूंग चने कंगुनी समा गेहूं मसूर इत्यादि लिखे हैं इत्यादि लिखे हैं अध्याय १६ मन्त्र २८ में कुत्ते और कुत्तों के पालने वाले लिखा है यदि स्वामी जी के विचारानुसार वेद में सोने का वर्णन होने से वेद नवीन ठहरते है क्योंकि सोना सृष्टिसे बहुत पीछे उत्पन्न हुआ है तो वेद में उक्त पदार्थों का वर्णन होनेसे वेद अवश्य ही बहुत नवीन ठहरे क्योंकि उक्त पदार्थ सृष्टिसे बहुत ही पीछे उत्पन्न हुए हैं पीतल तो मिश्रित धातु है बुद्धिमानोंने तांबा और जस्ता मिलाकर बनाया है निर्णय करो कि यह कब बना है स्वामीजीके विचारानुसार वेद उस से भी नवीन ठहरे ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पुरुषसूक्त मन्त्र ६ की व्याख्यामें है (पशूं स्तांश्चक्रे) गांव और वनके सब पशुओं को भी उसी ने उत्पन्न किया है तथा सब पक्षियों को भी बनाया है और भी सूक्ष्म देहधारी कीट पतंग आदि सब

जीवों के देह भी उसीने उत्पन्न किये हैं मन्त्र ८ की व्याख्या में है (तस्मादश्वाअजायन्त) उसी पुरुष के सामर्थ्य से घोड़े और जिनके मुख में दोनों ओर दांत होते हैं वे ऊंट गधा आदि उसी से गाय पृथिवी छेरी और भैंसें भी उत्पन्न हुई हैं मंत्र १२ की व्याख्यामें चन्द्रमा और सूर्यकी उत्पत्ति लिखी है देखिये वेद में सारे संसार की उत्पत्ति लिखी है जब कि स्वामी जी के वेद में विचारानुसार सोने का नाम आने से वेद नवीन ठहरते हैं तथा सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २०५ के न्याया-नुसार कि इतिहास जिसका हो उसके जन्मके पश्चात् लिखा जाता है वेद में सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति का वर्णन भूत का-लिक क्रिया के साथ स्पष्ट विद्यमान होने से वेद सर्वथा न-वीन ठहरे और स्वामी जी का यह लेख कि जिनके मुख में दोनों ओर दांत होते हैं वे ऊंट गधा आदि सर्वथा सृष्टि क्रम के विरुद्ध हैं क्योंकि ऊंट के मुख में एक ही ओर दांत होते हैं यहां सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३३१ का यह लेख स्मरणीय है कि इसका अर्थ न जानके भांग के लोटे चढ़ा अपना जन्म सृष्टि विरुद्ध कथन करने में नष्ट किया ।

उसी भूमिकाके पृष्ठ १० में (तस्माद्यज्ञात्स०) इस श्रुति के अर्थ में लिखा है कि उसी ब्रह्म से ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्व भी यह चारों वेद उत्पन्न हुए हैं सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २०५ के न्यायानुसार तो उक्त लेख से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि जिसको दयानन्दी लोग यजुर्वेद मानते हैं यह

यजुर्वेद नहीं किन्तु यजुर्वेद कोई अन्य ग्रन्थ है क्योंकि इसी ग्रंथमें इसकी उत्पत्तिका वर्णन है वस्तुतः यह माध्यन्दिनीय शाखा है और स्वामी जी शाखाओं को वेद मानते नहीं अतः उनके मतानुसार यह वेद हो ही नहीं सकता अथर्वादि के विषय में भी ऐसा ही समझना कि वे भी शाखा ही हैं यह दयानन्द के मूल सिद्धान्त की पांचवीं हानि हुई अस्तु-

वेदाङ्गप्रकाश एकादश भाग पृष्ठ ७ में लिखा है कि सुब्रह्मण्या एक ऋचा है संस्कारविधि मुद्रित संवत् १९३३ के पृष्ठ ५ में-धातादददातुदाशुषे और धाता प्रजानामुतराय यह दो श्रुति ऋग्वेद के नाम से लिखी हैं वे दयानन्द जी के माने ऋग्वेद में नहीं सत्यार्थप्रकाश सन् १८८४ के पृष्ठ २२३ में है कि-ततो मनुष्या अजायन्त, यह यजुर्वेद में लिखा है दयानन्द जीके माने यजुर्वेदमें यह कहीं नहीं उक्त संस्कार विधि के पृष्ठ ३२ में इयमाझे इत्यादि ३२ श्रुति सामवेद के नाम से लिखी हैं वे दयानन्द जी के माने हुये सामवेद में नहीं उसी संस्कार विधि के पृष्ठ ३८ में अंगादगात्संभवसि० इसको चारों वेदों में बताया है परन्तु उक्त मन्त्र दयानन्द जी के माने चारों वेदोंमें कहीं नहीं है अतः दयानन्द जीके लेखानुसार उनके माने हुये चारों वेद वेद नहीं हैं जिन ब्राह्मणादि ग्रन्थों में उनके लेखानुसार उक्त मंत्र हों वे ही ग्रंथ वेद हो सकते हैं यह दयानन्दके मूल सिद्धान्तमें छठीही हानि हुई अस्तु इत्यादि लेख से दयानन्द जी के मतानुसार सम्यक् सिद्ध हो

गया कि उसके माने हुये वेद वेद नहीं गये उनका वह सि-
द्धान्त कि जो २ वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है
उस २ का हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं और वह उ-
पदेश कि वेदों के प्रमाण से सब काम किया करो सर्वथा
निष्फल हुआ क्योंकि जिन ११३१ शाखा और ब्राह्मण ग्रंथों
तथा उपनिषदों को सम्पूर्ण ऋषि मुनि और समस्त विद्वान्
वेद मानते चले आये हैं उनको भी दयानन्द जी ने वेद माना
ही नहीं और जिन चार पुस्तकोंको उन्होंने वेद माना वे वस्तुतः
११३१ शाखान्तर्गत चारशाखा ही हैं तथा उन्हींके और लेखों
से उन का वेद न होना सम्यक् सिद्ध है जब कि उनके मता-
नुसार वेदों का पता ही नहीं तो वेदों के प्रमाण से सब काम
किया करो यह कथन बन्ध्यापुत्र के विवाह के सदृश है हे
दयानन्दियो ! आप को धर्म्माधर्म के निर्णय में केवल वेद ही
प्रमाण हैं और उनका पता नहीं जब तक आपके मतानुसार
प्रबल प्रमाण पूर्वक वेदों का पता न लगे तब तक आप लोग
मतविषयक वार्त्ता में किसी के सन्मुख किसी प्रकार जिह्वा न
हिलावें किन्तु सर्वथा मौन होजायें वेद क्या पदार्थ है प्रथम
इसका सम्यक् पता लगाइये अथवा पूर्व विद्वानों के मतानु-
सार ११३१ शाखा तथा ब्राह्मण ग्रंथों को वेद मानिये और
स्वामी जी के सिद्धान्त को उनका कपोल कल्पित सर्वथा
मिथ्या और त्याज्य जानिये यदि आप बलात्कार उक्त चार
शाखाओं ही को हठ दुराग्रह और पक्षपात से वेद मानें तो

स्वामी जी का लिखा हुआ सम्पूर्ण विधि निषेध उन ही में यथावत् दिखाइये अथवा उनसे भी हाथ उठाइये इन्होंने सत्यार्थप्रकाशादि में जो कुछ लिखा है प्रायः और ही ग्रन्थों तथा स्वकपोल कल्पना से लिखा है कोई दयानन्दी उनके लेखों को वेदानुकूल सिद्ध करने का अभिमान रखता हो तो उन्होंने संस्कारविधि में जो १६ संस्कार लिखे हैं उन में से गर्भाधान नामक प्रथम संस्कार ही में जो कुछ मनु शतपथ और आश्वलायन तथा यजुर्वेद के गृह्य सूत्रों से लेख किया है उसी को अपने माने हुए वेदों से यथावत् सिद्ध करे पञ्चयज्ञमहाविधि में से संध्योपासन ही का क्रिया विधान कि इस मन्त्र से आचमन और इन मन्त्रों से इन्द्रिय स्पर्श तथा मार्जन प्राणायाम परिक्रमा उपस्थान करे और यह गुरु मन्त्र है दोनों सन्ध्याओंमें इसका जप करे अपने माने हुए वेदों में यही लेख दिखावें सत्यार्थप्रकाश मुद्रित सन् १८८४—पृष्ठ २४ सजातीय विजातीय स्वगत भेद शून्य ब्रह्म। पृष्ठ ३३ नवें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानोंका उपनयन करके इत्यादि। पृष्ठ ४२ विश्वानिदेव और गायत्री मंत्र से आहुति देवे। पृष्ठ ५४ प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण लक्षण सहित पृष्ठ ५४ से पृष्ठ ६६ तक के सूत्र। पृष्ठ ७८ जो कन्या माता के कुल की छः पीढ़ियों में न हो और पिता के गोत्र की न हो उस कन्या से विवाह करना उचित है। पृष्ठ ८० नक्षत्रादि नाम वाली कन्या से विवाह न करना चाहिये।

पृष्ठ ८१ गुण कर्मानुसार ब्राह्मणादि के लड़के लड़कियों का बदला करना। पृष्ठ ९१ बीस आने सैकड़े से अधिक ब्याज और मूल से दूना सौ वर्ष में भी न लेना देना पृष्ठ ९२ ब्रह्मादि आठ प्रकार के विवाह लक्षण सहित। पृष्ठ ९७ उत्तम स्त्री आदि सब देश तथा सब मनुष्यों से ग्रहण करे। निन्दा-स्तुति का लक्षण। पृष्ठ १०१ वैश्वदेव विधि पूर्ण। पृष्ठ १७१ राज दण्ड की व्यवस्था पृष्ठ १८८ उपासना समय मन को नाभि प्रदेश वा हृदय कण्ठ नेत्र शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़में किसी स्थान पर स्थिर करना। पृष्ठ १९४ ईश्वर त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का काम है इत्यादि। पृष्ठ २२४ मनुष्यों को आदि सृष्टि तिब्बत में हुई। आर्यावर्त्त की अवधि। पृष्ठ २४२ पञ्च कोषों की व्याख्या। पृष्ठ २५८ निषेकादि संस्कारों की व्याख्या और सब शिखा सहित छेदन करा देना पृष्ठ ४७७ मुरदे के फूंकने की विधि जो वेद के नाम से लिखी है कि मुरदे के शरीर बराबर घी हो इत्यादि कोई महाशय सत्यार्थप्रकाश के इतने ही लेखों को स्वामी के लेखानुसार वेदों में दिखावे परन्तु यह सर्वथा असम्भव है उन के माने हुए वेदों में (चार शाखाओं में) एक विषयकी व्याख्या भी पूर्णतया नहीं मिल सकती सत्य ब्राह्मणात्मक संपूर्ण वेद और ऋषि मुनि कृत सद्ग्रन्थों के माने बिना विधि निषेध रूप धर्माधर्म का यथावत् निर्णय कदापि नहीं हो सकता देखो सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ३७७ में तुम्हारे गुरु ही ने लिखा

है कि वेदादि सत्यशास्त्रों को माने विना तुम अपने वचनोंकी सत्यता और असत्यता की परीक्षा और आर्यावर्त की उन्नति भी कभी कर सकते हो । फिर पृष्ठ ४११ में है कि जो अवि-द्यादि दोषों से छूटना चाहो तो वेदादि सत्य शास्त्रों का आ-श्रय लेओ क्यों भ्रम में पड़े २ ठोकरें खाते हो । कहिये वेदादि पद में आदि शब्द से ब्राह्मण औरऋषि मुनिकृत ग्रन्थों ही का ग्रहण हो सकता है या और कुछ विद्या का चमत्कार है या अविद्या का अन्धकार कि केवल वेदोंको मानते हैं अन्य ग्रन्थों को विषसंपृक्तान्नवत् त्याज्य जानते हैं फिर भी वेद के साथ आदि पद का प्रयोग करते हैं अपनी अज्ञता के प्रकट करने में उद्योग करते हैं अस्तु——

दयानन्दजी ने जो यजुर्वेद का भाष्य किया है वह भी शतपथादि ब्राह्मण तथा निरुक्त और पूर्वाचार्यों के विरुद्ध है महा अशुद्ध है जो कोई उसको वेद का वास्तविक अर्थ जा-नेगा वेदों को अनादि अपौरुषेय और ईश्वर निःश्वसित तो क्या किसी विद्वान् के रचे हुए भी न मानेगा आर्यों की कपो-लकल्पना कहेगा घृणित रहेगा उन के भाष्य में प्रायः परस्पर विरुद्ध महा अशुद्ध अश्लील असमञ्जस हिंसा रत और निर-र्थक लेख भरे हैं स्यात् स्वामी जी ने लोगों को वेदों से हटाने ही के लिये ऐसे अनर्थ करे हैं हमने दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य की समीक्षा तथा दयानन्द हृदय के अन्त में संक्षेप से उनकी समालोचना की है दयानन्द के दयालु धर्मात्मा और विद्वान्

होने की सम्यक् पोल खोली है यहां भी उन के यजुर्वेद भाष्य का कुछ लेख दिखलाते हैं। बुद्धिमानों को कलियुगाचार्यकी अज्ञता संकेत से समझाते हैं—यजुर्वेद भाष्य अध्याय ५ मन्त्र ६ का पदार्थ है जगदीश्वर—मैं और आप पढ़ने पढ़ाने हारे दोनों प्रीति के साथ वर्त्त कर विद्वान् धार्मिक हों कि जिससे दोनों की विद्या वृद्धि सदा होवे इति स्वामी जी के विचार में ईश्वर पूर्ण विद्वान् और धार्मिक नहीं है धन्य! अध्याय ५ मन्त्र ३२ का पदार्थ है जगदीश्वर! जिस कारण आप सुख दुःखको सहन करने और कराने वाले हैं इति दयानन्द की बुद्धिको देखिये कि ईश्वरको सुख दुःखका सहन करने वाला भी ठहरा दिया धन्य! अध्याय ६ मन्त्र १४ का पदार्थ हे शिष्य! मैं तेरे जिस से मूत्रोत्सर्गादि किये जाते हैं उस लिङ्ग को पवित्र करता हूँ तेरे जिस से रक्षा की जाती है उस गुदेन्द्रियको पवित्र करता हूँ इति ऐसा अनर्थ करते संन्यासी जी को कुछ भी लज्जा न आई अध्याय ७ मन्त्र ३७ का पदार्थ ईश्वर कहता है कि हे (इन्द्र) सब सुखोंके धारण करने हारे (शूर) हम लोगों को सब जगह से भय रहित कर इति यहां स्वामीजी की बुद्धिने ईश्वर को भी भयभीत कर दिया धन्य! अध्याय ११ मन्त्र १० का पदार्थ है कारीगर पुरुष जो तेरे

साथ एक स्थान में वर्त्तमान हम लोग जो भूमि खोदने और विवाहित उत्तम स्त्री के समान कार्यों को सिद्ध करने हारी लोहे आदि की कसी है जिस से कारीगर लोग भूगर्भ विद्या को जान सकें उसको ग्रहण करके जगती मन्त्र से विधान किये सुख दायक स्वतन्त्र साधन से प्राणों के तुल्य विद्युत् आदि अग्नि को खोदने के लिये सब प्रकार समर्थ हों उसको तू बना। भावार्थ-मनुष्यों को उचित है कि अच्छे खोदने के साधनों से पृथ्वी को खोदें और अग्नि के साथ संयुक्त सुवर्ण आदि पदार्थों को बनावें। लो दयानन्दियो! लुहार से प्रार्थना करके लोहे आदि की कसी बनवाओ और सुवर्ण आदि पदार्थोंको बनाकर सहज ही में धनवान् हो जाओ-परन्तु वेद में सोने का वर्णन होनेसे स्वामी जीके पूर्वोक्त विचारानुसार वेद नवीन ठहरते हैं इस का क्या उपाय है ऐसे अनर्थों से वेदों की महिमा है वा निन्दा अध्याय १३ मन्त्र ४६ का भावार्थ-जो जंगल में रहने वाले गौल गाय आदि प्रजा की हानि करें वे मारने योग्य हैं इति अब कहिये यह हिंसारत लेख है वा नहीं अध्याय १४ मन्त्र ५ का भावार्थ जो स्त्री अविनाशी सुख देने हारी इति स्वामी जी ने मुक्ति सुख को तो विनाशी माना और स्त्री को अविनाशी सुख की देने हारी जाना कहिये यह आर्य धर्म है वा वामधर्म। अध्याय १४ मन्त्र ८ का

पदार्थ—हे पते ! या आो तू बहुत प्रकार की उत्तम क्रिया से मेरे नाभिसे ऊपरको चलने वाले प्राण वायुकी रक्षा कर मेरे नाभि के नीचे गुदेन्द्रिय मार्ग से निकलने वाले अपान वायु की रक्षा कर इत्यादि कहिये यह समंजस है वा असमंजस कैसा ही हो शिष्योंको तो बाबा वाक्य प्रमाण ही है। अस्तु-

अध्याय १४ मन्त्र ६ का पदार्थ पोठ से बोझ उठाने वाले ऊंट आदि के सदृश वैश्य इति क्यों जी दयानन्दी वैश्यो यह लेख ठीक है कोई तुम को ऐसा कहे तो बुरा न मानोगे ? अध्याय १५ मंत्र ५३ का भावार्थ—कन्याओं की पुरुष और पुरुषों की कन्या परीक्षाकर अत्यन्त प्रीति के साथ चित्त से परस्पर आकर्षित हो के अपनी इच्छा से विवाह करें इति सत्यार्थप्रकाश-संस्कार विधि में ब्राह्मादि आठ प्रकार के विवाह लिखे हैं यह उनमें से कौनसा है ॥

अध्याय १६ मंत्र १७ का पदार्थ-आम्रादि वृक्षों को काटने के लिये वज्रादि शस्त्रों को ग्रहण कर इति कहिये आम्रादि वृक्षों के काटने से जगत् का उपकार होगा वा अपकार ॥

अध्याय १६ मंत्र ५२ का पदार्थ-हे सुअर के समान सोने वाले राजन् ! इति कोई बुद्धिमान् सामान्य पुरुषको भी ऐसी नीच उपमा न देगा राजाको तो क्या ॥

अध्याय ११ मंत्र २० का भावार्थ-जो इस संसारमें बहुत पशुवाला होम करके हुत शेष का भोक्ता वेदवित् और सत्य क्रिया का कर्त्ता मनुष्य होवे सो प्रशंसा को प्राप्त होता है इति स्वामी जी ने पूर्व सत्यार्थप्रकाश में यज्ञ के निमित्त गाय बैल आदि का मारना लिखा था पीछे धिक् २ होने पर नवीन सत्यार्थ प्रकाश में छोड़ दिया परन्तु वासना तो बनो ही थी वेद भाष्यमें बहु पशुवाला होम लिख दिया "हा! जाती नहीं कभी जो है मन में बसी हुई ॥

अध्याय १६ मंत्र ७६ के पदार्थ और भावार्थ में तथा अध्याय २० मंत्र ६ के पदार्थमें अति अनुचित अकथनीय अश्लील लेख है यहां सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ५५६ का वह लेख यथार्थ होगा कि ऐसी अश्लील बातें परमेश्वर की पुस्तक में परमेश्वर की क्या और सभ्य मनुष्य की भी नहीं होती जब कि मनुष्यों में ऐसी बातों का लिखना अच्छा नहीं तो परमेश्वर के सामने क्यों कर अच्छा हो सकता है ?

अध्याय १६ मंत्र ८८ का भावार्थ-स्त्री पुरुष गर्भाधान के समय में परस्पर मिलकर प्रेम से पूरित होकर मुख के साथ मुख आंखके साथ आंख मनके साथ मन शरीरके साथ शरीर का अनुसंधान करके गर्भ, का धारण करें जिससे कुरूप वा

वक्राङ्ग संतान न होवे इति कहिये यह कोकानुसरण है वा नहीं अध्याय २१ मंत्र ४३ का पदार्थ (छागस्य) बकरा आदि पशुओं के बीच से लेने योग्य पदार्थ का चिकना भाग अर्थात् घी दूध आदि इति कहिये कहीं बकरे का घी दूध सुना है यदि कहो कि स्वामी जी ने वकरी लिखा होगा प्रेस वालोंकी भूलसे वकरा छप गया तो मिथ्या है क्योंकि छागस्य पद की व्याख्या है जो कि पुल्लिंग ही का वाचक है बकरी के लिये छाग्या पद होता यहां सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३३२ का यह लेख ठीक है कि देखिये क्या ही असंभव कथा का गपोड़ा भंग की लहरी में उड़ाया जिसका ठौर न ठिकाना सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३५५ का वह लेख भी स्मरणीय है कि कुछ मूर्ख लोग उसके जाल में फंस गये जब मर गया तब लोगों ने उसको सिद्ध बना लिया ॥

अध्याय २१ मंत्र ४७ का पदार्थ वट आदि वृक्षों के तृप्ति कराने वाले फलों को प्राप्त हो इति आम्रादि वृक्षों को काटने की आज्ञा देना और वट आदि वृक्षों के फलों को तृप्तिकारक कहना तथा उन की प्राप्ति को अच्छा जानना विद्वानों का काम है वा मूर्खों का ॥

अध्याय २१ मंत्र ५२ का पदार्थ-शरीर में स्तनों की जो ग्रहण करने योग्य क्रिया हैं उनको धारण करो इति यह वेद

की व्याख्या है वा नियोगाचार्यकी आज्ञा यहां, सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ४०२ का यह लेख यथार्थ है कि दुष्ट कामों की प्रवृत्ति होने के अर्थ वेदों को कलंक लगाया हो।

अध्याय २१ मंत्र ६० का पदार्थ-परम ऐश्वर्य के लिये बैल से भोग करे सुन्दर चिकने पशुओं के प्रति पचाने योग्य वस्तुओं का ग्रहण करे इति।

अध्याय २४ मंत्र २३ के पदार्थ में मुर्गों तथा उल्लू और नीलकण्ठ आदि पक्षियों की प्राप्ति और भावार्थ में उनके बढ़ाने को अच्छा माना है दयानन्दी लोग उक्त पक्षियों को अवश्य पालें और बढ़ावैं क्योंकि गुरु जो ने वेद भाष्य में लिखा है अध्याय २६ मंत्र २४का भावार्थ-स्त्री पुरुष उत्कण्ठा पूर्वक संयोग करके जिन सन्तानों को उत्पन्न करें वे उत्तम गुण वाले होते हैं इति यह वेदभाष्य है या वेदहास्य जो कोई ऐसे लेखों को वेद का अर्थ जानेगा वेद से श्रद्धा रहित हो जायगा॥

अध्याय २७ मंत्र ३४ का पदार्थ हे सत्य के रक्षक जमाई के तुल्य वर्त्तमान-विद्वान् इति क्या कोई दयानन्दी विद्वानों लिये उक्त सम्बोधन स्वीकार करेगा ?

अध्याय २८ मंत्र ३२ का भावार्थ-हे मनुष्यो ! जैसे बैल

गौओं को गाभिन करके पशुओं को बढ़ाता है वैसे ही गृहस्थ लोग स्त्रियों को गर्भवती कर प्रजा को बढ़ावें इति स्वामी जी ने ऐसे २ स्वकपोलकल्पित अनर्थरूप उपदेशों से विषयासक्ति ही को बढ़ाया और वेदों को कलंक लगाया।

सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ ४३७ में लिखा है कि विद्या सत्संग के विना जो मन में आया सो बक दिया–पृष्ठ ४३४ विना भोले मनुष्यों के ऐसी बात कौन मान सकता है–पृष्ठ ३६० यदि ऐसे २ पाखण्ड न चलते तो आर्यावर्त्त देशकी दुर्दशा क्यों होती पृष्ठ ५४८ जो ऐसे २ मत जगत् में प्रचलित न होते तो सब जगत् आनन्द में बना रहता।

अध्याय ३० मन्त्र २१ का पदार्थ–हे परमेश्वर सांप आदि को उत्पन्न कीजिये इति ऐसा मूर्ख जगत् में कोई न होगा जो सांपों की उत्पत्ति के लिये परमेश्वर से प्रार्थना करे दयानन्द जी का ऋग्वेद भाष्य भी ऐसा ही व्यर्थ है कि प्रायः अर्थ का अनर्थ है उन्होंने सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ११८ में (अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिमत्) ऋ० मं० १० । सू० १० की एक श्रुतिका यह अन्तिम टुकड़ा लिखकर जो व्याख्या की है कि जब पति संतानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि हे सुभगे ! सौभाग्य की इच्छा करनेहारी स्त्री तू (मत्) मुझसे (अन्यम्) दूसरे पतिकी इच्छा कर क्योंकि अब मुझ से सन्तानोत्पत्ति की आशा मत करे, इति । सर्वथा अशुद्ध है निरुक्त के विरुद्ध है यह पूर्ण मन्त्र इस प्रकार है–आघाता

गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि। उपबर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिमत्॥ इस सूक्तमें १४ मन्त्र हैं यह भाई और यमी बहिन का सम्वाद है बहिन ने भाईसे कहा है कि हम तुम आपसमें विवाह करें तब भाई कहता है कि वे युग आगे को आवेंगे जिन में भाई बहिन के साथ ऐसा अयोग्य कर्म करेंगे इस कारण हे सुभगे! तू मेरे सिवाय अन्य पतिकी इच्छा कर यही अभिप्राय निरुक्त में सम्यक् लिखा है सम्पूर्ण सूक्त और निरुक्त के देखने से स्वामी जी का छल कपट हस्तामलकवत् प्रकट होता है. उन के ऋग्वेद भाष्य की समालोचना पृथक् लिखेंगे यहां इतना ही नमूना बहुत है दयानन्द जीके ग्रन्थोंमें प्रायः वेदादि सत्शास्त्र विरुद्ध महाअशुद्ध सर्वथा असमञ्जस अयुक्त असम्भव अश्लील हानिकारक धर्म नाशक निरर्थक और मिथ्या ही लेख भरे पड़े हैं जो कि हमने अपनी पुस्तकोंके द्वारा दिग्दर्शनवत प्रकट किये हैं वस्तुतः उसका मूल सिद्धान्त ही निर्मूल है जो कि उन्हीं के लेखों के प्रतिकूल है इतने पर भी प्रायः दयानन्दी लोग जो कि अपने और दूसरों के तथा संस्कृत विद्यासे सर्वथा अनभिज्ञ हैं अविद्वानों के संमुख झूठे आक्षेप करके कहते हैं कि कोई हमसे शास्त्रार्थ करले परन्तु जहां कोई विद्वान् उनकी पोल खोलने और शास्त्रार्थ करनेके लिये उपस्थित

होता है वहां बड़े २ दयानन्दी महाशय भागने वा धोखा देने से जीत होती हो तो ऐसा ही करें सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ६१ गुरुजी के इसी लेख की शरण लेते हैं।

दयानन्दियों को किसी पर किसी प्रकार का आक्षेप करने का अधिकार नहीं उनके गुरु ही को उनका यह अनुचित कर्मस्वीकार नहीं सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ३१६ में स्वामी जी का लेख है कि बहुत मनुष्य ऐसे हैं कि जिनको अपने दोष तो नहीं दीखते किन्तु दूसरों के दोष देखने में अति उद्यत रहते हैं यह न्यायकी बात नहीं क्योंकि प्रथम अपने दोष देख निकाल के पश्चात् दूसरे के दोषों में दृष्टि देके निकालें इति गुरु जी के लेखानुसार दयानन्दियों को अत्यावश्यक है कि जब तक अपने दोष सम्यक् देखकर न निकालें तब तक दूसरों के दोषों में कदापि दृष्टि न दें और किसी पर किसी प्रकार का आक्षेप न करें नहीं तो गुर्वाज्ञा के विरोधी समझे जायंगे, और सर्वत्र इसी बात पर मात खायंगे, अस्तु हे दयानन्दियो ! दयानन्दी मत दोषों का भण्डार है और उसके दोषों की गणना अपार अभी उनपर दृष्टि न दीजिये आपका मत वेद है और जो २ वेद में करने और छोड़ने की शिक्षाकी है वही आप को स्वीकार है अतः वेद क्या पदार्थ है प्रथम अपने इसी मूल सिद्धान्त का निर्णय कीजिये पुनः स्वामी जी

के लेखों को वेदसे मिलाइये जो २ यहां पावै उसे शिर चढ़ाइये शेषको कपोल कल्पित जानिये झूठा अधर्म और अग्राह्य मानिये मूलसिद्धान्त अर्थात् वेदों के निर्णय होने पर आपके सम्पूर्ण सिद्धान्तों के सत्यासत्य का सम्यक् निर्णय होजायगा और जबतक वेदों ही का निर्णय नहीं आपका कोई सिद्धान्त भी विद्वानों के सन्मुख प्रतिष्ठा न पायगा सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ५४६ में आपके गुरुका लेख है कि जो दूसरे मतोंको कि जिसमें हजारों करोड़ों मनुष्य हों झूठा बतलावे और अपने को सच्चा उस में परे झूठा दूसरा मत कौन होसकता है ? इससे आप लोग किसी मत को भी कदापि झूठा न कहें किन्तु मौन ही रहें आप के झूठा कहने से किसी का झूठा न ठहरेगा किन्तु आपही का मत झूठा रहेगा अस्तु—

॥ इत्यलम् ॥

छन्द—दयानन्द का मूलसिद्धान्त जो था, प्रकट उस की हमने दिखाई है हानि । हैं लेख उसके ग्रन्थों में सर्वत्र ऐसे । कि है जिनसे विद्वान् पुरुषों को ग्लानि ॥ करे सिद्ध जो मूल सिद्धान्त गुरुका । मैं समझूं उसी शिष्यकी बुद्धिमानी । नहीं तो दयानन्द मत गप्प जानो । जगन्नाथकी सत्य है मित्र बानी ॥

दोहा—सिद्धि प्राणनिधि चन्द्रमा विक्रमाब्द पहिचान ।
चैत्रकृष्ण तिथि सप्तमी पूर्ण ग्रंथकी आन ॥१॥ इति ॥